मनन के क्षण

मनन के क्षण

मालती

मनन के क्षण

मालती

Page Setter
CHHATPAR
99677 222 63

अपनी खिङकी खोल।
देख, जग तुझसे मिलने को खङा है।
बंद दरवाजे के खुलने की अपेक्षा न कर।
जो खुला है, वही काफी है।
उसीसे तन-मन भर ले।

बीज के मिटे बिना क्या अंकुर फूट सकता है?
'स्व' के मिटे बिना क्या 'पर' आ सकता है?
'बीज' की कब्र पर ही पेड़ उगा करता है।
'अहम्' की कब्र पर ही 'सोहम्' फला करता है।

दधि मंथन से मक्खन निकलता है,
विचार-मंथन से ज्ञान।
मक्खन को तपाकर घी मिलता है,
ज्ञान को प्रज्वलित रख आनन्द।

एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकतीं।
अच्छाई-बुराई साथ नहीं रखी जा सकतीं
तो केवल अच्छाई को ही क्यों न सहेजे रहें ?

जग उस कलाकार की प्रतिमूर्ति है ।
कलाकार तो विरोधों में भी
सामंजस्य खोज लेता है,
अभावों में रंगीनी भर देता है;
अपने अंतस की छटा ही
उसे चारों ओर दिखाई देती है ।

युवा, अधेड़, वृद्ध सभी बालक ही हैं ।
एक खिलौना छिन गया या टूट गया तो,
दूसरा पकड़ लेते हैं,
पकड़ छोड़ते ही नहीं।

कुछ घाव खुले रखने से ठीक होते हैं,
कुछ बंद रखने से।
जीवन के घाव भी ऐसे ही हैं–
जो घाव तुमने दिये हैं – खुले रखो,
उन्हें याद रखा तो पुनः न दे पाओगे !
जो घाव पाये हैं, बंद कर दो,
उन्हें भुला दो, दर्द, दुर्गंध मिट जायेगी।

बच्चे लड़ते हैं और एक हो जाते हैं,
बड़े लड़ते हैं और गले कट जाते हैं।

फव्वारा बनना चाहते हो तो
दबाव बढ़ाओ।
तुम पर ही निर्भर है,
कैसा फव्वारा बनते हो ?
प्रेम या घृणा का, करूणा या ईर्ष्या का !

प्रकृति का सान्निध्य अच्छा लगता है ।
वह स्वस्थित होते हुए भी उन्मुक्त है,
दूसरे सा बनने, बनाने की चाह नहीं,
अतः दूसरे का नकार भी नहीं।
सबका ही स्वागत है।

मौन सब झगड़ों की दवा है, पर
तन का नहीं, मन का ही ।
तन का (ज़बर्दस्ती का) मौन तो
अधिक मुखर हो जाता है, पर
मन का मौन, शांति–आनंद फैला देता है।

मात्र फूल चढ़ाने से ही पूजा नहीं होती,
तन–मन के फूल चढ़ाने होते हैं।
मंत्र–जाप से ही प्रार्थना नहीं होती,
संपूर्ण हृदय को खोल देना होता है।

मालिक के कहे अनुसार काम करते रहकर,
नौकर खुशी-खुशी सारी जिंदगी बिता देता है।
पर हम उस अदृष्ट मालिक की
अनहद ध्वनि सुनते ही नहीं,
मन को खाली रखते ही नहीं।

चाहते हो तुममें से खुशबू आये तो,
यह लाशों को ढ़ोना छोड़ो,
अतीत को जला दो, दफ़ना दो, बहा दो।

गर्भ की सुरक्षा छोड़े बिना,
बाहर की दुनियाँ नहीं दिखती।
मन के महल को तोड़े बिना
विराट से परिचय नहीं हो पाता।

उड़ना चाहते हो तो उड़ो।
रोका किसने है ?
पर, पहले
अतीत की ज़मीन से,
पैर तो उठाओ।
भविष्य की डोर से भी न बंधो।
फिर भोगो,
वर्त्तमान में उड़ने के आनन्द को।

नींव ही पक्की न हो तो सद्‌गुणों की इमारत,
देर-अबेर ढ़ह ही जायेगी।

कोई शिखर कितना ही ऊँचा हो,
आकाश को नहीं छूता।
उनके छोटे-बड़े होने को लेकर,
विवाद करना, क्या व्यर्थ नहीं है ?

मैदानों में, पठारों पर खड़े इक्के-दुक्के पेड़,
सबल व्यक्तित्व का अहसास कराते हैं।
कोई घना है, कोई विरल, कोई ठूँठ ही है,
पर, फिर भी उनकी एकल गरिमा
कितनी मनमोहक है !

शिकायत के स्वर क्यों, कब उठते हैं ?
तब, जब हम स्वयं से ही तुष्ट नहीं होते,
फिर, कोई दूसरा हमें कैसे संतुष्ट कर सकता है ?

हमारा बोलना नब्बे प्रतिशत
गैर ज़रूरी ही नहीं,
व्यर्थ ही होता है।
जिस दिन यह समझ आ जाती है,
मौन स्वयं उतर आता है।

चेतन या अचेतन रूप में, दूसरे के
तन-मन को चोट पहुँचाकर,
हमारा स्वयं का भी तन-मन,
चेतन या अचेतन रूप में,
आहत नहीं होता क्या ?

मैं महत्त्वपूर्ण हूँ, असामान्य हूँ,
औरों से अलग और उच्च ।
यह, हर व्यक्ति की सामान्य सोच है;
और अभद्र व्यवहार का कारण भी ।

शमशान का रखवाला
कब्रों में मुर्दों को दफनाकर,
वातावरण को दुर्गंध से बचाता है।
पर, हम कब्रें खोद, गड़े मुर्दे निकालकर
वातावरण में दुर्गंध फैलाये जाते हैं।

वांछित वस्तु न मिली तो
जीवन निस्सार लगता है।
पर, क्या मिलने से सार आ जाता है ?
नहीं न ! फिर, हम क्यों,
लेने की, पाने की
भाषा में ही, सोचे जाते हैं ?

पूर्ण समर्पण किसीके भी प्रति हो,
'उसके' प्रति हो ही जायेगा।

कोई हमें नकारे तो हम सह नहीं पाते,
या तो क्रोध करते हैं या दुःख।
पर, पल-पल, दिन रात तुझे नकारते समय,
क्या हमें खयाल भी आता है कि
तू क्या सोच रहा होगा ?

अलविदा ले रहा हूँ दूसरों से,
क्या इसी तरह, पूरे होश में
कभी अपने से भी,
विदा ले सकूँगा ?

लक्ष्य एक हो तो मिलकर चलना भी आ जाता है,
छोटी-छोटी बातें फिर कोई मायने नहीं रखतीं।

प्रकृति के मौसमी प्रकोपों -
सर्दी, गर्मी, वर्षा से बचने के लिये,
खोहों (मकानों) में जाना होता है ।
मन के मौसमी प्रकोपों -
काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह से बचने के लिये,
वैदिक ऋचाओं में बताई गई
हृदय गुहा में, जाना होता है।

मुक्ति फैलाव है, बंधन संकुचन,
चाहे वह मानसिक हो या शारीरिक।
व्यक्ति जितना संकुचित घेरे से बाहर निकलता है,
प्राण उतने ही उत्फुल्ल हो जाते हैं;
शिकायतें कम हो जाती हैं।

दूसरे की बेइंसाफी के बारे में ही सोचते रहना,
स्वयं को, बेइंसाफी करने के लिये
तैयार करना भी हो जाता है, क्योंकि
जाने-अनजाने, मन में घुमड़ती सोच
फलित हो ही जाती है।

जब 'स्व' को पीड़ा पहुँचती है,
तभी दुःख होता है।
गहराई से देखें तो,
दुःख 'अहम्' को ही दर्शाता है।

गरीब और दुःखियों की सेवा, उनके साथ
रहकर ही हो सकती है।
दूर से की गई सेवा हक़ीकत में,
या तो भीख देना है या
मगरमच्छी आँसू बहाना।

जीवन का प्रारम्भ और अन्त 'अकेला' होता है।
मध्य में भी यह अकेलापन छाया रहे तो
अंतस दिख ही जाता है,
फिर तो सारे द्वन्द ही मिट जाते हैं।

यौवन कब साथ छोड़ता है ?
जब कोई सीखना बंद कर देता है,
कल की फिक्र करने लगता है;
सुरक्षा के सामान जुटाने लगता है।

'मोहभंग' करने में दूसरे का
व्यवहार महत्त्वपूर्ण होता है ।
अतः उस दूसरे को कोसो मत,
आभार मानो कि उसने तुम्हें;
संतत्व की ओर बढ़ने का मौका दिया।

यदि गलत (पाप) कर्म करने पर,
कर्त्ता को पीड़ा नहीं होती,
तो समझ लो वो अभी
उन्हें छोड़ने को तैयार नहीं है।

कोई कार्य बुरा तभी होता है,
जब उसे छुपाया जाता है ।
कबीर और कमाल की सेंधमारी,
चोरी नहीं कहलाई थी।

विचार उधार हो सकते हैं, मगर भाव ?
क्या दूसरे की इच्छा से अपने मन में
क्रोध या प्यार पैदा किया जा सकता है ?
अंतस में चिन्गारी न हो तो
बाहरी लौ किसे भड़कायेगी ?

ऐशो-आराम का ज़हर,
इन्सान को मारता तो नहीं;
पर, पंगु अवश्य बना देता है।

'समर्पण' में ना होता ही नहीं,
सभी स्वीकार है।
वे तो दो सामानान्तर रेखाऐं हैं,
जिनका मिलन,
कभी संभव ही नहीं होता।

यहाँ हर कोई अपने को असाधारण–
अधिक बुद्धिमान, शक्तिवान, धनवान,
ज्ञानवान आदि माने जाता है;
जबकि असाधारण तो वह है, जो
अपने को सामान्य इन्सान मानता है।

माँ, पिता और गुरु की डाँट, मार में,
यदि करूणा नहीं दिखती, तो
देखने वाले की दृष्टि का ही दोष होगा।

दूसरे से अपने को
बड़ा सिद्ध करने की आकांक्षा,
जीवन को खोखला बना ही देती है;
फिर वह क्षेत्र तन–मन–धन का हो
या बुद्धि, शक्ति, प्रीति का ।

जीवन शैली ही,
शिक्षा का एकमात्र उपकरण है ।
खुद चढ़े बिना,
चढना नहीं सिखा सकते,
खुद तैरे बिना,
तैरना भी नहीं।

मन के घाव कुरेदते रहने से नहीं भरते,
भुला देना ही मलहम बन पाता है।

अनुभूति की गहराई हो, तभी
अनुभव से गुज़रना होता है;
तभी बदलाव आता है ।
सौ डिग्री या शून्य डिग्री की
गहराई तक न जाये, तो पानी,
भाप या बर्फ में बदलता नहीं,
वही का वही रह जाता है।

अधिकांश जीवन मृत व्यक्ति के
कार्डियोग्राम जैसे ही होते हैं,
सीधे-सपाट,
बिना किसी उतार-चढ़ाव के।

मन-मस्तिष्क के द्वार
सभी के लिये खुले हों,
तभी खुले हैं,
नहीं तो बंद ही हैं।

निरभिमानी तो चींटी, घास, मिट्टी
किसी से भी, नित्य ही,
कुछ न कुछ सीखता रहता है पर;
अभिमानी को तो स्वयं ईश्वर भी
कभी, कुछ भी नहीं सिखा पाता।

असीम के साथ मिलकर,
एक हो जाने की अनुभूति तो
बहने में ही है, तैरने में नहीं।

जिनके पास समय ही समय है,
वे ही समय न होने की शिकायत करते हैं;
शिकायत में भी तो समय ही खो रहे हैं।

यदि मानव की तरह
क्यों, कैसे, कब आदि प्रश्नों में,
प्राकृतिक शक्तियें (सूर्य आदि) उलझकर,
काम करना बंद कर दें या
पल दो पल को ही सही थम जाँयें तो ?
तो क्या होगा ?

हम सभी कितने
व्यर्थ चिंतन, व्यर्थ वार्ता, व्यर्थ कर्म
किये जा रहे हैं – यहाँ ?
जीवन सार्थक बन ही कैसे सकता है !

आज हर कोई 'ऊबा' हुआ लगता है,
घर–परिवार, समाज, राष्ट्र, संसार
और अपने से भी।
तभी तो बाहरी चमक–दमक, उछल–कूद,
स्पर्धा–प्रतिस्पर्धा, हिंसा–प्रतिहिंसा है, जग में!

किसी को जानना हो तो
उसकी जीवन शैली देखो।
वह लेने की है या देने की,
छुपाने की है या खुलेपन की;
हाँ की है या ना की।

जीवन के महल की नींव
भ्रूणावस्था में पड़ जाती है।
बाल्यावस्था में वह समधरातल तक
भर दी जाती है।
किशोरावस्था में भी सहारा दे देकर,
दीवाल खड़ी करनी होती है।
तब कहीं जाकर तरूणावस्था का
महल खड़ा होता है।

खुले दिल जैसी कोई स्वतंत्रता नहीं, और
बंद हृदय जैसा कोई कारागार नहीं।

माँ ममता की मूरत लगती है,
क्योंकि उसके प्रेम में,
प्रतिदान की आशा ही नहीं होती ।

इकलेपन का अहसास
भीड़ में ही गहराता है;
आत्मा की ओर गति,
वहीं से आरंभ होती है।

दूसरों पर दोषारोपण
तभी तक किया जा सकता है;
जब तक स्वयं से
साक्षात्कार नहीं होता।

'अहंकार और ओंकार' एक से दिखते हुए भी,
अर्थ में कितने भिन्न शब्द हैं ! पर,
भिन्नता में एकता भी तो आ सकती है।
तब, अहंकार का संकुचन ही
ओंकार बन जाता है।

निगाह जैसे ही
दूसरों के दोषों पर पड़े, उसे
अपने ही दोषों की ओर मोड़ लें,
कटुता जन्म ही न ले पायेगी,
विनम्रता आ जायेगी।

भयमुक्त जीवन ही, सत्य का
साक्षात्कार कर पाता है।

सभी संबंधों की तरह वैवाहिक संबंध के भी,
चार स्तम्भ हैं – प्रेम, सत्य, विश्वास और धैर्य।

स्वयं ही विश्वास योग्य नहीं हैं, तो
संदेह करना, हमारा स्वभाव होगा ही।

आलोचक की सहायता के बिना,
'स्व' से पहचान;
मुश्किल हो जाती है।
उससे मुँह ना फेरो;
स्वागत करो उसका !

यदि भाप बन रही है तो
उसका निकास भी ज़रूरी है;
दबाव से तो विस्फोट ही होगा।

अंदर के खालीपन को भरने के लिये
इन्सान, बाहर दौड़ता ही रहता है,
रूककर अंदर तो झाँकता ही नहीं।
झाँक पाये तो हीरे-मोती का भंडार
वहीं दिख जाये।

दूसरा व्यक्ति तो दर्पण है,
हम हमारी अच्छाई-बुराई ही
उसमें देखते हैं और उसे
अच्छा या बुरा कह देते हैं।

बाहर की आग कोई भी
बुझा सकता है - पानी से।
पर, अंतस की आग
खुद ही बुझानी होती है -
क्षमा और करूणा से, प्रेम से।

कैसी विडम्बना है ?
दूसरे की आँखों में चढ़े बगैर व्यक्ति,
स्वयं अपने को ही;
महत्त्वपूर्ण नहीं लगता।

कुछ भी तो नहीं जानते हम ! फिर भी
सब कुछ जानने का दावा,
कितनी सहजता से,
हर वक्त करते ही रहते हैं।

अपनी कमियों का साक्षात्कार,
दूसरों की कमियों को,
सहना सिखा देता है।

चौबीसों घंटे साथ रहने वालों को भी
पूर्णतः नहीं जान पाते, फिर भी हम
दूसरों पर ऐसे टिप्पणी करते हैं,
जैसे कि जन्म-जन्मान्तरों से
साथ ही रह रहे हों।

जो माँ-बाप का न हो सका, वो
किसी का भी हो सकेगा क्या ?
चाहे पत्नी हो या बच्चे या मित्र ही।

अवसर यथार्थ उतना भयावह नहीं होता,
जितनी कि उसकी, कल्पना।

दिल व दिमाग का खुलापन,
विश्वास के ज़िद्दीपन से बचाता है।

सूखा पत्ता बनकर,
हवा के संग डोले बगैर;
विश्व का विस्तार,
नहीं नापा जा सकता।

ईश्वर की प्रकृति में,
कुछ भी अनावश्यक नहीं है,
सार्थक उपयोग करना आना चाहिये।

अभिमान जन्म से ही अन्धा होता है,
अतः अशक्त और असहाय।

दोस्ती के लिये चाहिये –
बालक सा दिल;
जो नाप–जोख नहीं करता,
हानि–लाभ नहीं देखता।

घर में अधिक सामान,
शरीर की रूकावट बन जाता है;
मन में अधिक सामान, आत्मा की।

दूसरों तक राह,
अपने से होकर ही जाती है ।
अपने प्रति धैर्य, प्रेम हो
तो दूसरे के प्रति भी,
धीरज रख पायेंगे, प्रेमपूर्ण हो पायेंगे।

तानाशाह की तानाशाही चलने का कारण,
उसकी वीरता कम,
दूसरों की कायरता अधिक होती है।

सभी झगड़ों का
स्थूल कारण कुछ भी बन जाय;
मूल कारण तो
अधिकार–भावना ही होती है।

दुःख क्यों होता है ?
स्वप्न-भंग के कारण ही तो !
फिर सपने संजोना, क्यों नहीं छोड़ते हम ?
जग कर, वर्त्तमान ही में क्यों नहीं रहते ?

भय, अकेलेपन का भय ही तो,
साथ खोजने को बाध्य करता है।

सभ्यता और संस्कृति का ज्ञान
परिवेश ही कराता है।

जो आँखें माँ की ममता को देख पाती हैं;
वे माँ की कठोरता को,
कटुता का पर्याय मान ही नहीं सकतीं।

सत्य को स्वीकार करना,
क्यों नहीं सीखते हम ?
अस्वीकार से, नकारने से
वह मिट तो नहीं जाता !
शुतुरमुर्ग बने रहने से हमारा कोई लाभ
कभी भी, नहीं हो सकता ।

चोरी चोरी ही होती है,
कण बराबर क्या और मन बराबर क्या ?

गलत राह जितनी जल्दी हो सके
छोड़ दो, राह के कंकड़ों को
पर्वत बनते देर न लगेगी।

बदलाहट का भय, विकास अवरूद्ध कर देता है,
बदलाहट चाहे परिवेश की हो या तन-मन की ।

गरिमा का संबंध,
स्वीकार भाव से ज़रूर होता है;
चाहे बुढ़ापा हो कि बीमारी,
हार हो कि जीत।

काँटेदार झाड़ियाँ सर्वदा रसहीन नहीं होतीं,
उनके रंगीन फूल यही बतलाते हैं।

संवेगों को भय से नहीं,
आँख चुराकर भी नहीं;
ध्यान से, सतत देखते रहकर समझो,
वे काबू में हो ही जायेंगे।

'न कार' को जीवन का अंग न बनाओ,
बढ़ाये गये हाथों को थामना सीखो, चाहे
वे दोस्ती के लिये हों या मदद के लिये।

दोषारोपण के कीड़े को निकाल फेंको,
जीवन बगिया खिल जायेगी, महक जायेगी।

गलत साधनों से,
ठीक को नहीं पाया जा सकता।

दोस्त बनाने से पहले यह जानलो कि,
वह तुम्हें किससे जानता है ?
तुम्हारे पास क्या है - उससे या
तुम क्या हो - उससे !

वेदान्त ही जीवन का प्रमुख लक्ष्य हो ।
वेद+अन्तः – जानो अपने ही अन्तस को;
उस एक को जाना तो सभी जान जाओगे।

अपमान का बदला, अपमान से ही लिया
तो उस वर्त्तुल से कैसे निकल पायेंगे !

मज़बूत इमारत के लिये
चार आधार स्तम्भ ज़रूरी हैं,
आत्मोन्नति के लिये भी चार स्तम्भ चाहिये –
आत्मविश्वास, आत्मसंयम,
परिश्रम और लक्ष्य।

अपने अंतस के चिंतन–मनन को;
दिनचर्या का अंग बनालो ।

अपने ही ज्ञान का,
जाने हुए का आदर न करना,
उस पर न चलना,
चरित्र के किस पहलू को उजागर करता है ?
आत्म विश्वास की कमी को या
अपने उस ज्ञान के उथलेपन को ?

'नकार' में दृढ़ता लानी हो तो,
पहले 'हाँ' कहना सीखना होता है।

ईर्ष्याग्नि में तर्क का घी डाला तो
केवल यह जीवन ही नहीं,
आगे के अनेकों जीवन भी,
जल कर खाक हो जायेंगे;
अग्नि भड़कती ही जायेगी।

तन छेदने के लिये अस्त्र लाना पड़ता है,
उसका संचालन सीखना होता है, पर
मन छेदने के व्यंग्य, कटुक्ति, बेरूखी के अस्त्र
बिना लाये, बिना सीखे, इन्सान
कितनी आसानी से चला लेता है।

हमें जो वस्तु-परिस्थिति मिली है,
वह हमारी ही कमाई है;
हमारे ही विचारों व कार्यों की देन है,
दूसरे तो केवल माध्यम हैं,
लेखनी की तरह, बस !

अपने सत्य को स्थापित करने के लिये,
दूसरे के झूठ को उछालना पड़े तो
क्या गरिमा बचेगी ?

सहिष्णुता सिखाई नहीं जा सकती,
प्यार हो तो वह स्वयं चली आती है।

अपनी की गई भूलों को स्वीकार कर लेना,
केवल स्वयं के समक्ष ही नहीं, सबके समक्ष भी;
भविष्य में भूल करने से बचा लेता है ।

'ना' जहाँ बहुत से दुर्गुणों से बचाता है,
वहाँ 'हाँ' समझ को,
नये आयाम भी देता है ।

अपनी स्थिति का जिम्मेवार
स्वयं को जान लेना ही,
जीवन में क्रांति ला पाता है।

यदि मृत्यु से साक्षात्कार भी,
जीवन शैली न बदल सके;
तो जीवन का बदलाव,
कभी संभव हो पायेगा क्या ?

परिस्थितियाँ कितनी भी विपरीत हों,
हम चिंतन, मनन, ध्यान तो कर ही सकते हैं;
ये न दूसरे व्यक्ति पर आधारित हैं,
न स्थान आदि पर ।

वर्ष में कुछ दिन ऐसे ज़रूर हों, जब
व्यक्ति केवल अपने ही सान्निध्य में,
अकेला रह सके;
अंतः ज्ञान का विस्तार होगा।

शक्ति होते हुए भी दूसरे के प्रति अन्याय,
अत्याचार के विरूद्ध कदम न उठायें;
भीष्म की तरह चुप रह जाँय तो,
महाभारत होकर ही रहता है।

'शीतयुद्ध' तुष्टिकरण की नीति का परिणाम है।

दोहरे मापदंड न रखे तो हर व्यक्ति,
परिवार, समाज और राष्ट्र को,
ऊँचाईयों के शिखर पर पहुँचा सकता है।

अपनी नीयत पर ही भरोसा न हो, तो
दूसरों की नीयत पर कैसे आए ?

किसीसे कुछ भी चाहनेवाला व्यक्ति
दुःखी होगा ही, चाहे
वह धन या मान हो, या प्रेम और विश्वास ।

जीवन में घृणित कुछ भी नहीं है,
सभी का उपयोग है, हो सकता है;
विष्ठा से गुज़र कर ही तो जन्म होता है।

सब मिलकर पढ़ने को राजी ही नहीं होते,
एक-दूसरे को पाठ पढ़ाना चाहते हैं,
मतभेद दूर हों भी तो कैसे ?

पैसे का सदुपयोग तिजोरी में रखकर नहीं,
ज़रूरतमन्दों के काम आकर ही होता है।

बच्चों को अपनी जीवन शैली से ही,
सिखाया जा सकता है;
थोथे उपदेश, कथनी-करनी का अंतर,
उन्हें विद्रोही ही बनायेगा ।

आज के युग में आदर्शवादिता हंसने की,
मखौल उड़ाने की वस्तु हो गई है;
यह दृष्टि तो स्वस्थता की परिचायक नहीं है।

दर्पण हमारे बाहरी रूप को ही नहीं दिखाता,
अंतस को भी उजागर कर देता है;
ज़रूरत है, गहनता से देखने की।

प्रेम और विश्वास होते हैं तो पूरे,
टुकड़ों में नहीं होते ।

विधि के विधान में अहंकार को,
ठहरने का अवकाश ही नहीं है ।
मीठी बोली के साथ, कोयल को
काला तन दे दिया,
शुभ्र तन के साथ, हंस को कर्कश वाणी।

दुर्गन्ध हटानी हो तो सुगंधि के फूल
खिलाने होते हैं;
बुरी आदतें हटानी हों तो,
अच्छी आदतें डालनी होती हैं।

बाहरी आवाज़ को या अपने ही कान को,
बंद करने मात्र से ही,
अंदर का शोर बन्द नहीं हो जाता ।

अनुभवों को बढ़ाना हो तो यायावर के समान,
बिना साजो-सामान के, अकेले ही,
कुछ दिन अनचीन्हे रास्तों पर,
भ्रमण कर आओ।

जैसी दृष्टि होगी,
सृष्टि वैसी ही दिखेगी।

एक से दिखते हुए भी कितने अलग हैं –
बगुला और हंस, कौआ और कोयल।

दूसरों की सफलता से, प्रशंसा से,
ईर्ष्या-द्वेष रखना,
अपने अन्य गुणों को तिलांजली दे देना है।

जवाब देने की जल्दी की तो प्रतिक्रिया होगी,
दिल की गहराई तक बात को,
घटना को पहुँचने तो दो ।

वेदान्त– सब जाने हुए का अंत हो जाय;
तभी सच में जानना होता है।

बीमार या दुःखी व्यक्ति के आस–पास,
केवल मौन बैठे रहना भी,
उसे बहुत आश्वस्त कर देता है।

हम स्वयं परीक्षार्थी भी हैं, और परीक्षक भी,
बीते जीवन से क्या सीखा, इसकी परीक्षा,
जीवन हर पल, हर घड़ी लेता रहता है।

दूसरों को प्रभावित करने की चेष्टा,
एक बचकानी हरकत है;
वह व्यक्ति को गरिमापूर्ण नहीं रहने देती।

जीवन को एक खेल की तरह जीयो,
जहाँ न हार है न जीत,
न छोटा है न बड़ा, न दोस्त है न दुश्मन।
कोई तनाव नहीं, मौज ही मौज है।
पर, हमने तो आज खेल को भी कृत्य
में बदल दिया है, दाँव पर लगा दिया है।

संघर्ष कोई भी हो,
स्वयं के मन का, परिवार, समाज, राष्ट्र का;
हल फौरन ही निकाल लेना चाहिये, नहीं तो,
गांठें सूक्ष्म और मज़बूत होती जाती हैं।

छोटी-छोटी बातों में, चीज़ों में,
खुश रहना सीख लिया तो
दुःख पास नहीं फटकेगा।

जीत की खुशी में,
दूसरे को हराना प्रमुख है तो,
वह स्वस्थ दृष्टिकोण नहीं है।

कल के लिये,
आज की खुशियों की बलि न चढ़ाओ।

चित्त की एकाग्रता ही ध्यान है,
चाहे वह काम छोटा सा ही हो;
रोज़मर्रे का ही हो जैसे,
नाखून काटना, खिलाना या खाना।

राह के दुःख दर्द को
हिमालय मानें या गतिरोधक,
यह हम पर ही निर्भर है।

भय भी ज़रूरी है ताकि
चौकन्ने रह सकें ।

एक ही परिस्थिती को कोई प्रतिकूल मान,
हार कर बैठ जाता है तो
कोई अनुकूल मान कर, आगे चल देता है।

नदी के दो पाटों की तरह ही
मानव जीवन के भी दो पाटों -
दिल और दिमाग की स्थिति है क्या ?
समानान्तर !

बीज में अंकुर निकलने के बाद ही
मालूम पड़ता है कि
उसे किस परिवेश की, कब,
कितने समय तक, ज़रूरत है।
कुशल माली, पौधे के विकास के लिये
वैसा ही करेगा;
अपने ही मोह को बंधन न बनने देगा ।

गहनता से हँसना और रोना
मस्तिष्क का बोझा कम करके,
दिल को भी भार रहित कर देता है।

वस्तुओं की पकड़ से ही नहीं,
भावों-विचारों की पकड़ से भी छुटकारा हो,
तभी मुक्ति है, स्वातंत्र्य है।

जागरण तभी होता है जब हम
जान जाते हैं कि अपने दुःख-सुख
के उत्तरदायी हम स्वयं ही हैं,
कोई और कारण बन ही नहीं सकता ।

जीवन में फूल खिलाने हों तो
फूलों पर ही दृष्टि डालनी होगी,
काँटों पर नहीं।

खुशी के अवसरों को परे खिसकाते ही रहे,
तो जीवन, मात्र वेदना से ही भर जायेगा।

अपमान के दंश से बचना हो, तो
किसी और की ज़िंदगी में दखल न दो।

प्रश्न पूछना बंद न करो ।
दूसरों से पूछा तो जग की, प्रकृति की,
ज्ञान-विज्ञान की जानकारी मिलेगी;
स्वयं से पूछा तो अपनी स्वयं की,
आत्मा की जानकारी मिलेगी।

जानना - समझना कब होता है ! जब हम
शब्दों के अंतराल को सुन पायें,
मौन की मुखरता को पकड़ पायें,
रोम-रोम में गहरे उतर पायें।

ज़ोखिम उठाने वाले के बारे में,
यह बात तो निश्चित है कि वह,
जीवन ऊर्जा से लबालब भरा है,
आत्म विश्वासी है, निर्भय है।

उधार लेना कभी सही नहीं होता
चाहे पैसा हो या ज्ञान ।
पहला, कर्मठता पर आघात करता है;
और दूसरा स्वयं के अनुभव से पाये,
सत्य के साक्षात्कार पर।

'थोथा चना, बाजे घना' की उक्ति,
भव्य आयोजनों, समारोहों के संबंध में,
सटीक बैठती है।

महानता
उपकार नहीं जताती ।
अपमान नहीं करती ।
किसीको अस्वीकार नहीं करती ।
स्वयं को बड़ा सिद्ध नहीं करना चाहती ।

'जब जागे, तभी सवेरा'
अपने को कोसो न,
सहजता से जीवन जीये जाओ।

बुद्धिमान विनम्र होगा ही, वह जानता है –
पूरा सागर शेष पड़ा है, जानने को।

हर व्यक्ति में कुछ योग्यताऐं होती है,
कुछ अयोग्यताऐं भी।
राह की सुगमता के लिये,
दोनों को ही जानना आवश्यक है।

कपड़े बदलने से, त्वचा नहीं बदलती,
मुखौटे लगाने से, स्वभाव नहीं बदलता।

धन, शक्ति या बुद्धि के प्रदर्शन में
कोई बड़ाई नहीं है।
निर्धन, निर्बल व निर्बुद्धि को भी
अकेले में व सबके सामने भी,
अपने ही समान, सम्मान दे सकें
तो ही बड़ाई है।

हिंसा कब बढ़ती है ? जब व्यक्ति
तुलनात्मक रूप से अपने को छोटा पाता है
और सही तरीके से बराबरी करने में असमर्थ।

यदि हम विशिष्ट होने की चाह न करें,
सामान्य, साधारण ही रहें तो,
सुख–शान्ति से कभी वंचित न होंगे।

अपनी बुद्धि पर भरोसा रखो, पर
दिल के आँख, कान भी खुले रखो ।

ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध व घृणा को अपने
में आश्रय देना, नरक की यातना भुगतना है।
इनकी आहट सुनते ही उदासीन हो जाना;
स्वागत के अभाव में ये स्वयं चली जायेंगी !

महत्त्वाकांक्षी यदि आत्मविश्वासी न हो,
तो अंधविश्वासी हो जाता है।

बाहरी यात्रा के लिये
चट्टानों पर प्रहार कर,
रास्ता बनाना होता है;
अंतः यात्रा के लिये 'अहम्' पर।

भूतकाल यदि हमें जीवन के प्रति
लोगों के प्रति अनुग्रहीत बना दे,
तभी सार्थक है।

तन, मन व आत्मा में सामंजस्य न हो तो
व्यक्ति रूग्ण हो जाता है।

पराश्रित होना, अयोग्यता का सूचक है और
पराश्रित करना अविश्वसनीयता का।

आज, घर-परिवार हो कि देश-समाज,
विचार-विमर्श का स्थान वाद-विवाद ने
ले लिया है ।
तभी स्वस्थ विकास भी
अवरूद्ध हो गया है ।

आज एक ईंच के वर्त्तुल में,
जग का पूरा ज्ञान समा जाता है, पर
पंद्रह ईंच के वर्त्तुल-खोपड़ी में
अपने सगे भी नहीं समाते।

सादगी का मतलब है -
ज़रूरतें कम होना, दिल व दिमाग खुला होना,
अभिमान रहित होना और
अंदर-बाहर की एकरूपता होना।

पीड़ित व्यक्ति ही पीड़ा देता है पर,
न चाह कर भी पीड़ा देने वाले की पीड़ा का,
कोई अनुमान भी लगा पाता है ?

'सीखता ही नहीं' की शिकायत,
दूसरे के प्रति - व्यर्थ है ।
अपने सिखाने का तरीका बदलो;
वही उसके अनुकूल नहीं रहा होगा ।

बुरे व्यवहार को आदत न बनने दो,
बचपन में ही बदल दो,
जड़ें जमाने के पहले ही;
नहीं तो, देर हो जायेगी।

बिना हवा के दीपक की लौ का
हिलते हुए दिखना, क्या बतलाता है ?
भवितव्य या अंतस की हलचल !
काल्पनिक उड़ान की कोई सीमा नहीं होती !

परमात्मा ने इन्सान को दिमाग व दिल तो
दिया है कि वह तर्क की कैंची व प्यार के धागे
का समुचित प्रयोग कर सके, पर शायद परस्पर
एक दूसरे पर, कोई अधिकार नहीं दिया ।

'नेकी कर कुऐं में डाल' – लोकोक्ति में
'दूजे की भूल न सोच-विचार' भी
जोड़ लें तो कैसा रहे ?

आज के मुखौटे और मुलम्मे के ज़माने में,
असल और नक़ल में भेद करना;
सीख-सिखा सकें तो ही
जीवन सफल किया।

तूफान के आने पर जो पेड़ अपने बाहरी आवरण को
हिलने देता है पर, जड़ें वहीं जमाये रखता है,
वही तूफान के चले जाने पर बच रहता है।

चारों ओर से हवा के थपेड़े पड़ें और
लौ निष्कंप ही रहे तो ही सार है।

शून्यता की स्थिति संकुचन की ही नहीं
फैलाव की भी होती है ।

प्यार न मिलने की शिकायत कर रहे हो ?
आत्म निरीक्षण करो, गौर से देखो –
शायद तुमने ही निस्वार्थ प्रेम नहीं किया था।

भावों और विचारों की ताँतों से गढ़ तैयार किया,
पूरा होने पर ही जाना, उसने तो मुझको कैद किया,
बिन तोड़े छुटकारा ना है, तोडूँ, वह साहस ना है,
मकड़ी जाले में सोच रही, कैसे मानूँ गढ़ दृढ़ ना है!

निज तन-मन की कमियों से,
ना आँख चुराओ, स्वीकारो;
तभी न गाँठ बन पायेंगी वे,
रहो सहज, विकृति काटो ।

ज़्यादा नियमों का बनना,
उनकी कमज़ोरी बतलाता;
कानून बनायें जब ज़्यादा,
तब ही उनको तोड़ा जाता।

देख रहे थे दोस्त चार,
एक ही दृश्य के रूप चार !
सांझ हुई ना अभी, दिवस बचा है अभी,
चाँद न निकला अरे अभी तक,
रंगीन मेघ छाये हैं अब तक।

कहा एक ने -प्रभु है सब में
बोले थे गुरू - सब ही है प्रभु।

मौन साधना का शिक्षक, घंटों उस पर बोले जाता,
सब हैं समान कहने वाला, घर में नौकर रक्खे जाता।
गांधी-सुभाष के जन्म पर्व
ना सत्य-शौर्य सिखला पाते,
कसमें खाते हैं माता की, सौ बार उसे दफना आते।

क्षुधित आज सोता ज़मीन पर
कल के लिये बचा रखता;
काल खड़ा हंस कहता उससे,
'क्यों वर्तमान खोये जाता !'

रहे ध्येय पर ध्यान तो,
कोई भी साधन पहुँचा देता,
न हो ध्येय से लगन,
बहाने अनगिन तब मन गढ़ लेता।

गरिमा से लेना ना जाने, वो देना कैसे जानेगा ?
बिना लिये जो देता जाता, अहम् भाव पनपायेगा।
दाता का अहम् भाव दूजे में, भिक्षु भाव पैदा करता,
सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो, धार्मिक वह कृत्य नहीं होता।

शत्रु मध्य रहने वाले, मित्रों की शत्रुता क्या जानें,
दुःख रहवासी क्या जानें, सुख का दुःख क्या होता है?
नरकों में रहने वाले, स्वर्गों के दुःख कैसे समझें,
अंधकार में रह 'प्रकाश कारागृह' समझ न आता है।

सिक्के के दो पहलू सम,
जन के द्वय रूप जुड़े होते;
गुण शिखरों के सम उसमें,
अवगुण गह्वर भी थिति पाते।

गर्भ-गुहा को छोड़ा तब
बाहर की दुनियाँ देख सका;
मन गह्वर क्यों ना छोड़ूँ,
विश्वास न है अनदेखे का!

दिखे मुर्दनी चेहरों पर, हम भी उदास हो जाते हैं,
चेहरा जो दिखे मुस्काता हम,
रोते-रोते हंस जाते हैं।
चहुँ ओर खुशी देखा चाहो तो
हरदम मुस्काना सीखो,
सौ गुना परावर्तित होकर,
निज का चेहरा दिखता सबको।

'कल से मैं बनूँ आज बेहतर'
ठानो, तो खुले विकास डगर ।

आज का मंत्रोच्चार –
है करणीय कार्य – आलस्य,
दातव्य भाव है – घृणा,
गृहणीय वस्तु है – धन, पद;
है त्याग योग्य बस – क्षमा।

अपनी बुद्धि से सब ही त्रसित
भ्रम से सोचें, हैं राहु ग्रसित,
शनि, मंगल, राहु, केतु, नक्षत्र
सब हैं व्यक्ति में ही स्थित;
अंतस के प्रहरी सजग रहो,
कर सके तुम्हें ना कोई लिप्त।

बस रोष करें, औ क्रोध करें,
जो है जैसा, वैसा ना लें,
हम सी मति यदि होवे उसमें,
तब ही उसको स्वीकार करें !
उसने भी यही चाहा होगा,
कैसे यह भूले जाते हैं,
जब नहीं बदलना चाहें हम,
बदलेगा वह, क्यों आस करें !

आज की हक़ीक़त –
चूज़े ने कहा, 'कुछ ना बोलो,
जैसे भी रखूँ घर है मेरा;
मैं खुश, मेरा साथी भी खुश,
अब और कहीं डालो डेरा।'

अपमान और औषध गोली
होती हैं अरे निगलने को;
मत मुख में रखकर चूसो रे,
करतीं विषाक्त ये तन–मन को।

समझ प्यार की सबमें होती,
बच्चा हो या बूढ़ा,
हर कोई प्रेम बोल चीन्हे,
हो सद्यजात या अंधा।

घात लगाये थी चिंता,
चिंतन छोड़ा तो आ धमकी;
तन लिप्त किया जब कामों में,
ना जान सका, वो कब खिसकी।

मन व्यक्ति का नित अभिमानी,
और कोई ना टिके वहाँ;
कहँ श्रद्धा औ प्यार कहाँ हैं,
मैं, मेरा बस रहा वहाँ।

एक ध्येय ना पा लो जब तक,
दूजा नहीं बनाना;
एक समय में सब चाहो तो,
हाथ नहीं कुछ आना।

कितने वर्गों में बंटा मनुज,
किस तबके पर वह छाया है;
क्या भाव ज़हन में गहराये,
दंगों ने हमें बताया है।

पूनम का चंदा, नभ पै जो चमका,
गई वेदना, हो गया दिल ये हल्का;
कहा रोशनी ने, निकल खोह में से,
शीतल है जग, जो खुले दिल से मिल ले।

यों हो उदास क्यों बैठा है,
अपनी शक्ति पहचान अरे;
औरों की राह न व्यर्थ देख,
वे खुद भी सहारा ढूँढें रे।

क्या बिल्कुल हैं उपदेश व्यर्थ,
कुछ भी, कोई ना उनमें अर्थ?
कृष्ण, राम, अत्रि, वशिष्ठ,
फिर क्यों देते उपदेश ?
क्यों शास्त्र बने, क्यों वेद बने,
उपयोग न उनका लेश ?

'ना' के स्वर उठते हों जहाँ,
श्रद्धा न समर्पण उस हिय में।
प्रेम जताये जो हरदम,
विश्वास नहीं जाना उसने।

जो बिन पहचाने मान देय,
अपमान वहीं से आयेगा,
कर रहा तुम्हें जो प्यार आज,
कल घृणा वही बरसायेगा।

श्वेत हंस पानी में देखकर, प्रश्न ज़हन में उभरा है,
श्याम चोंच औ कड़वी बोली;
विधना को क्या सूझा है ?
या वो कहता- कालिख का अंश
तुमको यह याद दिलायेगा;
तुम भी ना धुले हो दूधों से,
'हंकार' न तब टिक पायेगा।

ईर्ष्या-द्वेष के ज़हर को अमृत
करे, प्रेम की चाबी बस !

अपमान शरीरों का करते,
गुण धर्म वही इक होता है;
उसमें रहने वाला भी तो,
उस इक का हिस्सा होता है !

पर्वत न बनाओ राई का,
फिसलोगे, गिरोगे खाई में;
द्वेषाग्नि जलायेगी तिल-तिल,
धन, विद्या, रूप, खटाई में।

व्यर्थ वस्तु देने वाले,
जानें ना देना क्या होता;
हर वक्त मांगनेवालों का,
संतोष से ना कोई रिश्ता ।

सत्य, प्रेम, करूणा, मुदिता,
आदर, मैत्री, अनुग्रह;
इन्द्रधनुष के सप्तरंग,
कर दें जीवन आनन्दमय।

हंसी उड़ाने वाले, ना जानें,
हंसना क्या होता है ?
मातमपुरसी करने वाले,
ना जानें, रोना क्या है ।

खून बदलता ढ़ाई दिन में,
कैसे हों दृढ़ खून के रिश्ते ?
जनक, बंधु, बच्चों से नाता,
ढ़ाई मिटन में क्यों ना टूटे ?

कितना ही घिसो ईंटों को तुम,
वो कभी न बन सकतीं दर्पण;
जब ईंट जान ले निज स्वभाव,
बने तत्क्षण, आधार स्तम्भ।

है प्रेम का जादू ऐसा ।
परिचय बनता पहचान और
इन्सान बने भगवान;
हर दिल में बस वह ही धड़के,
सुनें, जो बन जाँय कान ।

सोने का, रूपे का दिल है तुम्हारा,
हीरों जड़ा मन का मंदिर;
तन की तिजोरी को रखना संभाले,
करें विनती दिग् औ दिगंतर।

सब है राम औ सभी राम का,
बाकी सोच हैं सपने,
तू है सबका, सब हैं तेरे,
भय, क्रोध रहें ना मन में।

दिल में जला कर प्रेम दीप
फुलझड़ियाँ हंसी की छोडें;
जो कुछ हो झोली में,
आगत के संग बाँटें-खायें;
हर दिन दिवाली मनायें ।

रंग - रंग के फूल खिले,
आकार अलग, गंध अलग लिये;
हंसता उपवन, हरषाते हिये,
लौ एक, करोड़ों, लाखों दिये ।

जब छोड़ें खुदी तब ही जानें,
सब में है खुदा तब पहचानें;
प्रेमी से ताल-सुर मिल जायें।

जब सबको स्वीकार किया,
सब ही ने, भर अंक लिया;
मिटा क्षोभ, आनन्द पाया,
'स्व' के फैलाव ने समझाया ।

अधिकार भावना छोड़ी जब,
मन रिक्त हुआ, बोझिल न रहा;
चले जा रहा हूँ, तब से,
अब प्रभु ही मुझको चला रहा ।

मैं, मेरा तू कहता-सुनता,
सुने न कोई और;
मूरख मन फिर काहे पचता,
बसे न क्यों इक ठौर ।

कोई आकर मदद करे मेरी
क्यों ऐसी प्रतीक्षा करते हो ?
काम न होय, तनाव बढ़े,
उठ जागो, खुद कर सकते हो।

रंग-रोगन औ साफ-सफाई,
कर ली बहुत सराय की;
आयो समय गवन को, सुधि ले
अब भी महाप्रयाण की ।

फैला ले, मज़बूत बना ले
यहीं रहेगी ये दीवालें;
समय न खो, अब ढूँढ ले पगले,
साथ चलेगा जो वीराने ।